International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 20-01-2024, Accepted: 19-02-2024, Published: 05-03-2024
Volume 10, Issue 1, 2024, Page No. 21-24

आलोचना में दर्शन का शुक्ल पक्ष

डॉ. अनिल कुमार
एसोसियेट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय), नई दिल्ली, भारत

सारांश
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य के एक मूर्धन्य आलोचक और इतिहासकार के रूप में जाने जाते हैं लेकिन उनकी दृष्टि में दर्शन एक रीढ़ की तरह है। आधुनिक काल के वैज्ञानिक दौर में उभर रहे नवीन चेतना को दर्शन की पूर्वप्रवाहित धारा से सहज ही टकराना पड़ा। रामचंद्र शुक्ल भी टकराते हैं। वे विज्ञान तथा विकासवाद को दर्शन की शर्त पर ही स्वीकार करते हैं और दर्शन को विज्ञान की शर्त पर। यही कारण है कि वे जगत् को मिथ्या नहीं सत्य मानते हैं। शुक्लजी के चिंतन के केन्द्र में किसान हैं, समाज हैं, देश है और देश की आजादी है। अपनी इस केन्द्रियता के कारण ही वे विज्ञान, दर्शन, साहित्य सब जगह मनुष्य तथा उसकी स्वतंत्रता की खोज करते हैं। आचार्य शुक्ल की आलोचना विज्ञान और दर्शन के द्वंद्व की परिणति है। प्रस्तुत शोध आलेख में इसे विस्तार से रेखांकित करने की कोशिश की गई है।

मूल शब्दः भौतिकवाद, विकासवाद, दर्शन, विज्ञान, जीवन–दृष्टि, विश्व–दृष्टि, परंपरा, सिद्धांत, लोक, संशयवाद, चौतन्य, वेदान्त, अद्वैतवाद, प्रतिबिंब, ब्रह्मांडवाद, आत्मवाद, बुद्धिवाद, आलोचना, साहित्य, सृष्टि, शाश्वत

भारत में विज्ञान का प्रभाव अंग्रेजी साम्राज्य की देन है। विज्ञान के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय जनमानस की मध्यवर्गीय धारणाओं को हिला दिया। विज्ञान और दर्शन एक–दूसरे के विकल्प के रूप में उपस्थित हुए। एक नया वर्ग पैदा हुआ जो दर्शन की मान्यता को ध्वस्त करने को उद्वत था। ऐसे समय में 'विश्व प्रपंच की भूमिका' रामचन्द्र शुक्ल को समझने के लिए एक आवश्यक निबंध है। इस भूमिका में तमाम चिंतकों के विचार इस प्रकार गुम्फित हैं कि इसमें शुक्लजी के अपने विचार खो–से गये हैं। यही कारण है कि विद्वान आलोचकों को शुक्लजी कहीं भौतिकवादी दिखते हैं तो कहीं भाववादी। यह भ्रम भूमिका को देखते हुए स्वाभाविक ही लगता है। फिर भी यह भूमिका शुक्लजी की जीवन–दृष्टि (या विश्वदृष्टि) को समझने के लिए एक बहुमूल्य दस्तावेज है। ''आज इस बहस का कोई अर्थ नहीं कि आचार्य शुक्ल वस्तुवादी थे या आत्मवादी और बुद्धिवादी थे या विधेयवादी या भाववादी।'' यह भूमिका शुक्लजी के दार्शनिक अभिज्ञान को दर्शाती है। दर्शन के स्तर पर भी शुक्लजी अपने समय के सामाजिक विचारों से टकराते हैं।

रामचन्द्र शुक्ल एक सजग समालोचक ही नहीं अपितु समाज निर्माता भी थे। विज्ञान की घुट्टी मध्यकालीन आस्था वाले समाज को पिलाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। रामचन्द्र शुक्ल विज्ञान और दर्शन को विरोधी नहीं मानते। वे दोनों को एक–दूसरे का पूरक मानते हैं। जगत् की उत्पत्ति, जीवों की उत्पत्ति आदि की व्याख्या शुक्लजी विकासवादी ढंग से करते हैं और उसे मान्यता देते हैं। ''एक मूल रूप से क्रमशः अनेक रूपों की उत्पत्ति, एक सादे ढाँचे से अनेक जटिल ढाँचों का उत्तरोत्तर विधान'' को शुक्लजी स्वीकार करते हैं। शुक्लजी उन रूढ़ मान्यताओं को बरखास्त करते हैं जिनमें सृष्टि एकबारगी ही बतायी जाती है। वैज्ञानिक खोजों को शुक्लजी अन्य रूढ़ आत्मवादियों की तरह संदेह की दृष्टि से नहीं देखते–– ''ईश्वर साकार है कि निराकार, लम्बी दाढ़ीवाला है कि चार हाथवाला, अरबी बोलता है कि संस्कृत, मूर्ति पूजनेवालों से दोस्ती रखता है कि आसमान की ओर हाथ उठानेवालों से, इन बातों पर विवाद करनेवाले अब केवल उपहास के पात्र होंगे। इसी प्रकार सृष्टि के जिन रहस्यों को विज्ञान खोल चुका है उनके संबंध में जो प्राचीन कथाएँ और कलपनाएँ (6 दिन में सृष्टि की उत्पत्ति, आदम हौवा का जोड़ा, चौरासी लाख योनि इत्यादि) हैं वे अब ढाल तलवार का काम नहीं दे सकती'' यहाँ शुक्लजी के विचारों की प्रकृति को देखा जा सकता है। वे विज्ञान को दर्शन के सहयोगी के रूप में देखते हैं। वे एक ऐसे समाज के निर्माण में लगे थे जो रूढ़ियों से पीड़ित तथा शोषित है परन्तु धर्मप्राण है। धर्म में उसकी आस्था अगाध है। अपनी धार्मिक आस्थाओं तथा विश्वासों के बदौलत ही वह आज तक जीवित है। उस समाज के लिए शुक्लजी विज्ञान की संस्कृति चाहते हैं। एक ऐसी वैज्ञानिक संस्कृति जिसमें महान मानवीय मूल्यों का निषेध न हो। जो ऊपर से थोपा न जाय, जो स्वयं अपनी ही परंपरा का स्वाभाविक विकास हो। ऐसी ही परंपरा पोषित संस्कृति धर्मप्राण भारतीय जनता को ग्राह्य हो सकती थी। विज्ञान ने मानवता को विकास का दर्शन दिया। यह विज्ञान की सबसे बड़ी देन है। सामंतवादी समाज की जड़ता को गतिषील बनाने में विज्ञान ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। विज्ञान की इस प्रगतिशील भूमिका से रामचन्द्र शुक्ल वाकिफ थे। वे दर्शन की अपर्याप्तता को भी समझ रहे थे। दर्शन की अपर्याप्तता को जानते हुए भी शुक्लजी उसे खारिज नहीं करते हैं। वे विज्ञान तथा विकासवाद को दर्शन की शर्त पर ही स्वीकार करते हैं और दर्शन को विज्ञान की शर्त पर। यही कारण है कि वे जगत् को मिथ्या नहीं सत्य मानते हैं। दरअसल शुक्लजी के चिंतन के केन्द्र में किसान हैं, समाज हैं, देश है और देश की आजादी है। अपनी इस केन्द्रियता के कारण ही वे विज्ञान, दर्शन, साहित्य–– सब जगह मनुष्य तथा उसकी स्वतंत्रता की खोज करते हैं।

रामचन्द्र शुक्ल विकासवादी कोटि के आत्मवादी हैं। अतः वे स्थिर योनि सिद्धांत को मान्यता नहीं देते। उनकी दृष्टि में ''इस समय सृष्टि में जितने जीव हैं वे एक साथ पैदा नहीं हुए।'' इसलिए वे जात्यंतर परिणाम के सिद्धांत को भी मान्यता देते हैं। ''जिस स्थिति में जो जीव पड़ जाते हैं उसके अनुकूल उनके अंग और उनका स्वभाव क्रमशः होता जाता है। नई स्थिति में जिन के व्यवहार की आवश्यकता नहीं रह जाती वे निश्क्रिय होते–होते कई पीढ़ियों के पीछे लुप्त हो जाते हैं।'' शुक्लजी डारविन के इस मत से भी सहमत हैं कि एक जाति के जीवों से क्रमशः दूसरी जाति के जीवों की उत्पत्ति होती है।

शुक्लजी विकासवाद के महत्व को समझते हुए भी उसे अपर्याप्त मानते हैं। उनकी इस धारणा की पुष्टि योरप में हो रही

उथल–पुथल से होती है। इस क्रम में वे विज्ञानवाद की हद को देख रहे थे–– ''योरप की दशा तो आजकल यह हो रही है कि वहाँ जीवन के हर एक विधान से उसे धारण करनेवाला शाश्वत तत्व निकलता जा रहा है। क्या राजनीति, क्या समाज, क्या साहित्य सब डगमगा रहे हैं।'' यह उस समय का वक्तव्य है जब विज्ञान दुनिया को द्वितीय विश्वयुद्ध का उपहार देने की तैयारी कर रहा था। विज्ञान ने एक नया वर्ग पैदा किया जिसका धर्म लाभ के लिए कुछ भी करने को तैयार बैठा था। इसी को शुक्लजी ने शाश्वत तत्व का अभाव कहा है। विज्ञान के प्रभाव ने जीवन से इसी शाश्वत तत्व के दबाव को कम कर दिया और सत्ता वर्ग ने अपनी स्वार्थ सिद्ध के लिए प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल आरंभ कर दिया। इसी का परिणाम है आज का उपभोक्तावाद। नवजागरण काल का विज्ञान अपने समाज को गति प्रदान करने में सक्षम था। इसके पीछे एक दर्शन था, मूल्य–चेतना थी। उसका लक्ष्य मनुष्य था और मनुष्यता उसके केन्द्र में थी। वर्तमान विज्ञान एक उत्पादक शक्ति भर है। वह अधिक–से–अधिक उत्पादन और लाभ पर आधारित है। मनुष्य मशीन से नियंत्रित हो रहा है। विज्ञानवाद द्वारा प्रस्तावित इस मशीनी जड़ता को शुक्लजी देख रहे थे। पश्चिमी समाज पर वह हावी हो चुका था। भारतीय समाज का एक वर्ग जो पश्चिमी समाज से आकृष्ट हो रहा था शुक्लजी उसी आकर्षण को काटने का प्रयास कर रहे थे। संभवतः यही कारण है कि शुक्लजी ने हैकल की इस पुस्तक का अनुवाद किया। हैकल ने अपनी इस पुस्तक में विकासवाद को सम्पूर्ण जगत विधान पर घटाया है और विज्ञान को दर्शन के समकक्ष स्थापित करने का प्रयास किया।

''सत्य की खोज में दर्शन अहंज्ञान ''ईगो'' के विनाश को आवश्यक मानता है, जबकि विज्ञान अहंज्ञान ''ईगो'' को ही अपना अस्तित्व समझता है और इस प्रकार आदर्श एवं यथार्थ दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का जन्म होता है।'' शुक्लजी का समय आदर्शवाद से ओतप्रोत है। स्वतंत्रता की इच्छा आदर्शवादी होने को बाध्य करती है। हालाँकि शुक्लजी इस आदर्श का निर्माण यथार्थ की जमीन पर करते हैं। कोरा आदर्श प्रेमचंद की तरह इन्हें भी स्वीकार नहीं है परन्तु दर्शन में शुक्लजी इस आदर्शवादी विचारधारा के साथ खड़े दिखाई पड़ते हैं–– ''विज्ञान इसी अभेद की खोज में है, धर्म इसी की ओर दिखा रहा है।'' शुक्लजी यह मानते हैं कि दर्शन जिधर संकेत कर रहा है विज्ञान उसे अपनी खोजों द्वारा प्रमाणित करता चल रहा है। अतः दर्शन और विज्ञान का या आदर्श या यथार्थ का विरोध उन्हें स्वीकार्य नहीं। विज्ञान की निरपेक्ष चिंतन–पद्धति पर शुक्लजी प्रश्न–चिह्न लगाते हैं। बीसवीं सदी के महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने अपने ''सापेक्षवाद के सिद्धांत'' (थ्योरी ऑव रिलेटीविटी) से यह सिद्ध किया कि इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व सीमित और सापेक्ष है। इस प्रकार विज्ञान आइन्स्टीन के सिद्धांत के उसी निष्कर्ष पर पहुँचता है जहाँ सांख्य, वेदान्त और योगदर्शन पहुँच चुका है। इसी को शुक्लजी दर्शन का संकेत कहते हैं।

रामचंद्र शुक्ल दर्शन के तहत विज्ञान से यह उम्मीद करते हैं कि वह जगत् के समस्त व्यापारों के मूल की व्याख्या करे। इसी क्रम में वे स्पेंसर को भी याद करते हैं जिसने विकास सिद्धांत की दार्शनिक स्थापना प्रस्तुत की थी। हर्बर्ट स्पेन्सर ने विकास की परिभाषा करते हुए कहा कि–– ''एकरूपता या निर्विशेषता से अनेकरूपता या सविशेषता की ओर अव्यक्त से व्यक्त की ओर गति का नाम विकास है।'' हर्बर्ट स्पेन्सर ने आगे स्पष्ट किया कि इस गति का कारण द्रव्य में समवेत है। स्पेन्सर ने हैकल के समान जड़ और चेतना व्यापारों को एक नहीं माना। हैकल ने परमतत्व के दो पक्ष कहे हैं–– द्रव्य और गतिशक्ति। स्पेन्सर ने अज्ञेय सत्ता के भी दो पक्ष बताए–– गतिशक्तियुक्त द्रव्य और मन। शुक्लजी स्पेन्सर के मत की विवेचना करते हुए लिखते हैं कि ''स्पेन्सर की अज्ञोय मीमांसा के साथ उसकी विकास की व्याख्या मेल नहीं खाती।'' शुक्लजी ने स्पष्ट किया कि मूल सत्ता के विवेचन में उसने अपनी स्थापनाओं का कोई उपयोग नहीं किया। इतना ही नहीं उसने ''न तो यह बताया है कि अज्ञेय सत्ता क्यों देश–काल के भीतर अभिव्यक्त होती है और न यह कहा है कि वह क्यों पहले जड़ जगत् के रूप में व्यक्त हुई, पीछे चौतन्य रूप में।''

हर्बर्ट स्पेन्सर, हैकल आदि विकासवादी चिंतकों के मतों की समीक्षा करते हुए शुक्लजी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ''विकासवाद केवल गोचर व्यापारों की पूर्व–परंपरा या स्फुरणक्रम–मात्र दिखाता है। ये सब व्यापार किसके हैं, वस्तु या सत्ता का शुद्ध (इंद्रिय निरपेक्ष) स्वरूप क्या है, यह वह नहीं बताता। वह केवल तटस्थ लक्षण कहता है, स्वरूप लक्षण नहीं।'' विकासवाद मानसिक और भौतिक दोनों व्यापारों की परिणाम परंपरा की व्याख्या करता है और वह सम्पूर्ण जगत् की समस्या को अपने में अंतर्भूत करता है। पर विकासवाद की भी अपनी एक हद है। यह शुक्लजी की मान्यता है। जगत् की बहुत–सी ऐसी समस्याएँ हैं जिसकी व्याख्या वह ठीक–ठीक नहीं कर पाता। इतना ही नहीं विकासवाद यह समझाने में भी असमर्थ है कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति किस रीति से होती है। दूसरी तरफ जगत् के समस्त व्यापारों की व्याख्या भी वह स्पष्ट रीति से नहीं समझा पा रहा है। विकासवादी तर्क से शरीर–विकास और आत्मविकास एक ही रीति से माना गया है। शुक्लजी का तर्क है कि ''शरीर व्यापार और मनोव्यापार दोनों में, एक ही प्रकार के नियमों की चरितार्थता, दोनों का साथ–साथ उत्तरोत्तर क्रम से विकास दिखाया गया है सही, पर दोनों एक नहीं सिद्ध हो सके। विकासवाद के सारे निरूपण मन या आत्मा की प्रथमोत्पत्ति नहीं समझा सके हैं।'' शुक्लजी की इन जिज्ञासाओं का उत्तर विज्ञान के पास नहीं है। विकासवादी इन प्रश्नों को टाल जाते हैं। शुक्लजी हैकल के इस विचार से भी सहमत नहीं हैं कि मस्तिष्क के भीतर प्रतिबिम्ब या संस्कार ग्रहण करनेवाला एक प्राप्यकारी अवयव होता है। शुक्लजी आगे लिखते हैं कि ''केवल यही कह देने से कि एक वस्तु पर प्रतिबिम्ब पड़ता है यह समझ में नहीं आ जाता कि वह वस्तु यह बोध भी करती है कि मुझ पर प्रतिबिम्ब पड़ रहा है या प्रतिबिम्ब इस प्रकार का है।'' ऐसी ही बातों का समाधान शुक्लजी विकासवाद से चाहते हैं। उस समय तक विज्ञान पदार्थ (या भूत) से आगे नहीं बढ़ पाया था। विज्ञान से इन बातों का समाधान न पाकर ही शुक्लजी विज्ञान से निकलकर शुद्ध दर्शन की ओर मुड़ते हैं।

यूरोपीय आत्मवाद का आरंभ देकार्त से माना जाता है। उसकी धारणा है कि ''जो कुछ बोध आत्मा को होता है वह अपने भावों या प्रत्ययों का ही है। अतः यदि किसी सत्ता का पूर्ण निश्चय है तो आत्मसत्ता का।'' देकार्त के इस आत्मवाद को कांट ने पुष्ट किया और दिखाया कि बाह्य जगत् का ज्ञान हमें संवेदन द्वारा होता है। आगे शुक्लजी ने योरोपीय अद्वैतवाद के मूलाधारों का विवेचन किया है जिसमें यह प्रमाणित किया गया है कि दिक्, काल और कार्यकारण संबंध कोई बाहरी वस्तु नहीं बल्कि चित् का ही स्वरूप है। ''अंतः करण अपनी इन्हीं तीन व्यवस्थाओं (दिक्, काल और कार्यकारणभाव) द्वारा बाह्य जगत का चित्र खींचता है। पहले तो वह संवेदनों को कालबद्ध कर पूर्वापरक्रम की भावना करता है। फिर कार्यकारण भाव द्वारा उसके कपारण या आरोप करता है। अंत में इस कारण को दिक्बद्ध कर भौतिक स्थूल पदार्थ के रूप में उसकी भावना करता है।''

रामचन्द्र शुक्ल योरोपीय अद्वैतवाद का विश्लेषण करते हुए भारतीय वेदांत से उसके अंतर को स्पष्ट करते हैं–– ''यद्यपि भारतीय वेदांत की पद्धति योरोप की ज्ञानपरीक्षावाली पद्धति से भिन्न है पर अंत में दोनों दर्शन किस प्रकार एक ही सिद्धांत पर पहुँचे हैं यह बात ध्यान देने योग्य है।'' वेदांत में यह धारणा मान्य है कि क्रिया परिणामिनी है परन्तु चौतन्य अपरिणामिनी ज्ञाता ज्ञेय

रूप में सिर्फ क्रियाओं का ज्ञान करता है अपने स्वरूप का उसे ज्ञान नहीं रहता है जो अखंड है। शुक्लजी इसे लक्षण द्वारा बोधगम्य मानते हैं। सब प्राकृतिक व्यापार चौतन्य के ही लक्षणाभास हैं। इस प्रकार आचार्य इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ''ब्रह्म अनंत ज्ञानस्वरूप और अनंत शक्तिस्वरूप दोनों है। इस शक्ति को ब्रह्म का संकल्प ही समझा चाहिए जो अव्यक्त रूप में चौतन्य में अधिष्ठित रहता है।''

वैज्ञानिकों के अनुसंधान से शुक्लजी काफी आशान्वित हैं। वे यह देख रहे हैं कि दर्शन ने जगत् की उत्पत्ति का जो क्रम बताया है विज्ञान भी क्रमशः उन्हीं क्रमों को प्रमाणित कर रहा है। विज्ञान अपने सूक्ष्म अन्वीक्षणों से भूत की सामान्य सत्ता शक्ति तक पहुँच सका है। अब सिर्फ अड़ंगा है तो केवल ईधर का। ईधर के संबंध में वैज्ञानिक ठीक–ठीक नहीं जान पाये हैं परन्तु जो कुछ पता चला है उससे दर्शन के अनुमानों की पुष्टि होती है। ये तो स्पष्ट है कि शुक्लजी ने शब्द तो पुराने लिए हैं लेकिन उनकी स्थापनाएँ उनकी अपनी है।

रामचन्द्र शुक्ल अपनी वैचारिक भूमिका में वेदांत के पक्ष में खड़े दिखायी पड़ते हैं। उनको पूरा विश्वास है कि जगत् की सत्ता के संबंध में विज्ञान वहीं पहुँचने वाला है। अब चौतन्य और शक्ति का ही द्वैत बचा है। इन दोनों प्रकार के अद्वैतवाद का रूप क्या होगा यह प्रमाणित होना है। आधिभौतिक अद्वैतानुसार चौतन्य शक्ति के अन्तर्भूत हो या अद्वैत आत्मवाद के अनुसार शक्ति चौतन्य के अन्तर्भूत। हैकल ने जो परमतत्व के दो पक्ष भूत और शक्ति बतलाए हैं उनमें से भूत शक्ति के ही अंतर्भूत हो गया। यह विज्ञान द्वारा प्रमाणित तथ्य है। अब उसका परतत्व भी शक्ति की रह गया। योरोप के भाववादी और भारत के वेदांती चौतन्य को ही शक्ति का अधिष्ठान मानेंगे। शुक्लजी स्पष्ट कहते हैं कि ''अधिकांश वैज्ञानिक अपने विषय के बाहर न जाकर संशयवादी रहे, और अब भी हैं। वे चौतन्य और उसकी सत्ता असत्ता के विषय में कुछ कहना नहीं चाहते। डारविन, हक्सले आदि विकासवाद के प्रतिष्ठाता संशयवादी थे, अनीश्वरवादी नहीं।'' आखिर क्यों ये वैज्ञानिक अपने विषय ''कैसे'' से ''क्यों'' पर नहीं आना चाहते! स्पष्ट है कि जब वे सत्ता के विवेचन में आते हैं तो उनकी अपनी प्रारंभिक स्थापनाएँ गलत सिद्ध होने लगती हैं। वे अपने प्रयोगों से यह तो देख रहे हैं कि इस स्थूलजगत् के परे एक सूक्ष्मजगत् है जिसकी क्रिया–प्रतिक्रिया से द्रव्य की उत्पत्ति होती है। पर यही वे मानने को तैयार नहीं हैं क्योंकि तब न्यूटन के मशीनी ब्रह्मांडवाद का क्या होगा!

रामचन्द्र शुक्ल ने सर ऑलिवर लाज का लम्बा उद्धरण अपनी भूमिका में प्रस्तुत किया है। इस उद्धरण के विषय में कुछ लोगों की धारणा है कि शुक्लजी इससे सहमत हैं, ऐसा नहीं है। ऐसा लगता है कि वे लोग अपनी धारणा के टूटने के डर से ही ऐसा कह रहे हैं क्योंकि शुक्लजी को भौतिकवादी साबित करने में यह उद्धरण बाधक है। इस पूरे वक्तव्य और बीच–बीच में शुक्लजी की टिप्पणी को देखा जाय तो बात कुछ और साफ हो जाती है।

वस्तुतः शुक्लजी इस उद्धरण से विज्ञान में हो रहे अधुनातन आविष्कारों तथा उससे प्रमाणित होती चौतन्य धारणा को बताने का ही काम लेते हैं। चौतन्य की नित्य सत्ता को स्वीकार करते हुए शुक्लजी आधुनिक विज्ञान की असफलता के कारणों पर भी प्रकाश डालते हैं। विज्ञान जो कि अपनी खोजों द्वारा चौतन्य की ओर बढ़ रहा है परन्तु सत्ता की मीमांसा वह कर नहीं पा रहा है। इस ओर शुक्लजी ने वैज्ञानिकों को आकृष्ट किया है। वैज्ञानिकों की कमजोरी है कि वे पहले भूत फिर अणु और फिर परमाणु को निरपेक्ष और स्वतंत्र मान लेते हैं। जगत् की सत्ता का ठीक–ठीक निर्धारण नहीं कर पाने पर वे उधर से हट जाते हैं। यही कारण है कि शुक्लजी उन्हें संशयवादी कहते हैं। निर्जीव से सजीव की उत्पत्ति के संबंध में जो असफलता वैज्ञानिकों को मिली है उस ओर शुक्लजी ने संकेत किया है। उसके कारण को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि ''सजीव द्रव्य के मूल आदिम रूप की उन्हें ठीक धारणा ही नहीं रही है। वे अमीबा (अणुजीव) या अणूद्भिद् को आदिम रूप मानकर चले हैं। पर अमीबा या अणूद्भिद् को जिस जटिल रूप में हम देखते हैं वह लाखों वर्श की विकास परंपरा का परिणाम है। अतः सजीव द्रव्य का आदिम रूप इन दोनों से कहीं सूक्ष्म और सादा रहा होगा।'' यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है कि शुक्लजी विकासवादी धारणा से ही मूल सत्ता की ओर इंगित कर रहे हैं। शुक्लजी यह बताने का प्रयास कर रहे हैं कि क्यों विकासवाद जगत् के व्यापारों के कारणों की व्याख्या तो कर देता है पर वह दर्शन के ''क्यों'' की व्याख्या करने में असमर्थ है। कारण स्पष्ट है–– स्थापना। वह जिसे मूल मानकर चलता है वही गलत है। जिस प्रकार विकास सिद्धान्त मानव जीवन को एक क्रमिक विकास के रूप में देखता है, वैसे ही मानवीय भावों या वृत्तियों का संघटन भी बाह्य जगत् के नियमों के अनुकूल मानता है। स्वाभाविक तौर पर विकास सिद्धान्त सभी मानवीय क्रिया व्यापारों को सामाजिक व्यवहारों से जोड़कर देखता है। शुक्लजी भी विकास सिद्धान्त की मूल मान्यताओं से काफी हद तक सहमत हैं और मानवीय भावों या मनोविकारों को मानव जीवन के मूल आधार के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार धर्म, ज्ञान, शील एवं चरित्र इन्हीं मानवीय भावों के विशेष संगठन हैं, जिनका नियोजन मानव–समाज अपनी आवश्यकतानुसार करता आ रहा है। अतः 'लोकरक्षाश् और श्लोकरंजनश, जो सामाजिक व्यवस्था के मूल आधार हैं, वही शुक्लजी की जीवन–दृष्टि और रचना– दृष्टि का भी। इसी आधार पर वे धर्म, दर्शन, साहित्य सबकी व्याख्या करते हैं।

रामचन्द्र शुक्ल लार्ड केलविन, सर ऑलिवर लॉज आदि नाम प्रशंसात्मक भाव से लेते हैं। ये ऐसे वैज्ञानिक हैं जो संशयवादी नहीं हैं। वे मूल सत्ता को खोजने का प्रयास कर रहे हैं। परन्तु आधुनिक योरप और अमेरिका में भी पाखंडी हैं इस ओर भी शुक्लजी का ध्यान है। इस पाखंड की चर्चा शुक्लजी करते हैं। यह पाखंड उस वैज्ञानिक असफलता और आत्मसमर्पण का परिणाम है जो या तो मूल सत्ता के निर्धारण में असफल हो गया या उस ओर से मुँह मोड़ लिया है। योरप और अमेरिका में कुछ दिनों से परोक्षशक्ति के साधक भी खड़े हुए हैं जो अनेक प्रकार की सिद्धियाँ दिखाकर आत्मसत्ता का अस्तित्व प्रतिपादित करने का उद्योग करते हैं। ये मृत पुरूशों की आत्माओं से बातचीत करने, उनके द्वारा अलौकिक घटनाओं के होने का हाल सुनाया करते हैं। पर इनमें से अधिकतर छल और प्रवंचना का आश्रय लेते हैं इससे शिक्षितों और वैज्ञानिकों की इन पर आस्था नहीं है। शुक्लजी इन पाखंडियों की क्रियाओं को ''उद्योग'' कहते हैं। यह आधुनिक युग का अंधविश्वास है जो वैज्ञानिक सभ्यता की ही देन है। शुक्लजी विज्ञान को एक नैतिक और सामाजिक बंधन के भीतर ही स्वीकार करते हैं। इस तरह का अंधविश्वास विज्ञान के जनविरोधी रवैये का नतीजा है। रामचन्द्र शुक्ल विज्ञान की संस्कृति, गरीब और पीड़ित लोगों के लिए ही चाहते हैं। कोई भी अनुशासन जो देश की अधिसंख्य जनता को प्रभावित न करे, उसे संबोधित न हो– तो शुक्लजी उसे अनर्थकारी मानते हैं। यह अकारण नहीं है कि शुक्लजी शॉपेनहावर को दुःखदायी कहते हैं और उसके दुःखवाद को आधार बनाकर नित्से और फिर जर्मनी के करतब को याद करते हैं। शुक्लजी की दृष्टि विज्ञान की जड़ता तथा उसके अतिवादी आधार दोनों पर है। यही कारण है कि वे विज्ञान को दर्शन के समानांतर रखकर ही देखते हैं। दर्शन और साहित्य की श्रेष्ठता के आग्रह में, आधुनिक वादीय विशृंखलता के विरोध में शुक्ल जी संरक्षणशील लग सकते हैं, पर उनकी दृष्टि स्थितिशीलता का समर्थक नहीं है।

भौतिकवाद दर्शन के प्रति काफी कुछ सहानुभूति पूर्वक लिखते हुए भी अपनी विश्वदृष्टि या दार्शनिक चिन्तन में शुक्ल जी

भौतिकवादी नहीं हैं। उनके चिन्तन में तमाम कुछ जहाँ उनके बुद्धिवाद और विवेकवाद द्वारा अर्जित है, वहीं तमाम कुछ वंश–परम्परा, संस्कारों के तहत आया हुआ भी शामिल है। उनके चिन्तन में विवेक के तह अर्जित उनके विचार उनके संस्कारों के तहत आए हुए से टकराते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के बाद यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शुक्लजी न तो एकांत आत्मवादी हैं और न ही एकांत अनात्मवादी। वे विज्ञान तथा दर्शन दोनों का समन्वय करते हैं। उनका उद्देश्य न तो किसी का खंडन है और न ही मंडन। वे जीवन जगत् को तार्किक रूप से समझना चाहते हैं। समाज में व्याप्त विषमता को वे तोड़ना चाहते हैं। उनका उद्देश्य है समाज में प्रेम पैदा करना, राग पैदा करना, एकता की स्थापना। वे सीधे–सीधे दो पक्ष मानते हैं जो वास्तव में होना चाहिए–– आत्मवादी और अनात्मवादी। वे सभी धर्मों, मजहबों की धारणा से स्थूल अतार्किक बातों का उन्मूलन कर देते हैं क्योंकि इन विश्वासों तथा अंधविश्वासों का कोई आधार नहीं है। अतः नाना मतों और मजहबों की विशेष स्थूल बातों को लेकर झगड़ा–टंटा करने का समय अब नहीं है। शुक्लजी एक धर्म–प्रधान देश की धर्मप्राण जनता के बीच के व्यक्ति हैं। यह वह देश है जहाँ अनेक धर्मों तथा सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। अतः सभी लोगों के लिए एक समान दृष्टि की आवश्यकता है। शुक्लजी उस आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयास करते हैं। ''नाना भेदों में अभेद दृष्टि ही सच्ची तत्वदृष्टि है। इसी के द्वारा सत्य का अनुभव और मतमतांतर के राग–द्वेश का परिहार हो सकता है।'' यह वक्तव्य इस भूमिका का मूलमंत्र है। शुक्लजी विज्ञान को अधिसंख्य गरीब जनता के विचारों को विकसित करने तथा उनको खुशहाल करने का साधन भर मानते हैं। उसे वे आज की तरह स्वच्छंद देखना नहीं चाहते।

संदर्भ सूची

1. आलोचना, अंक 20, जनवरी–मार्च 1972, पृ0 56
2. रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग–3, संव नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ0 155
3. वही –, पृ0 181–182
4. वही –, पृ0 125
5. वही –, पृ0 126
6. वही –, पृ0 276
7. मंधाता सिंह, विज्ञान और वेदांत, ज्ञान विज्ञान प्रकाशन, आरा, संस्करण 1987, पृ0 2
8. रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग–3, संव नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ0 185
9. वही, पृ0 162
10. वही, पृ0 164
11. वही
12. वही, पृ0 165–66
13. वही
14. वही
15. वही, पृ0 167
16. वही
17. वही, पृ0 174
18. वही
19. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2014, पृव 33
20. रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग–3, संव नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ0 177
21. वही, पृ0 159
22. अभय कुमार ठाकुर, रामचंद्र शुक्लरू कल, आज और कल, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2023, पृष्ठ 354
23. 23मंजुला राणा, समीक्षा के व्याहारिक संदर्भरू आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2018, पृव 105
24. शिवकुमार मिश्र, हिंदी आलोचना की परंपरा और आचार्य रामचंद्र शुक्ल, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2014, पृव 193
25. रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग–3, संव नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ0 182